अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 50 अंक : 1 पौष–माघ वि.सं. 2079 जनवरी, 2023 सहयोग राशि- अठारह रुपये पृष्ठ–28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X
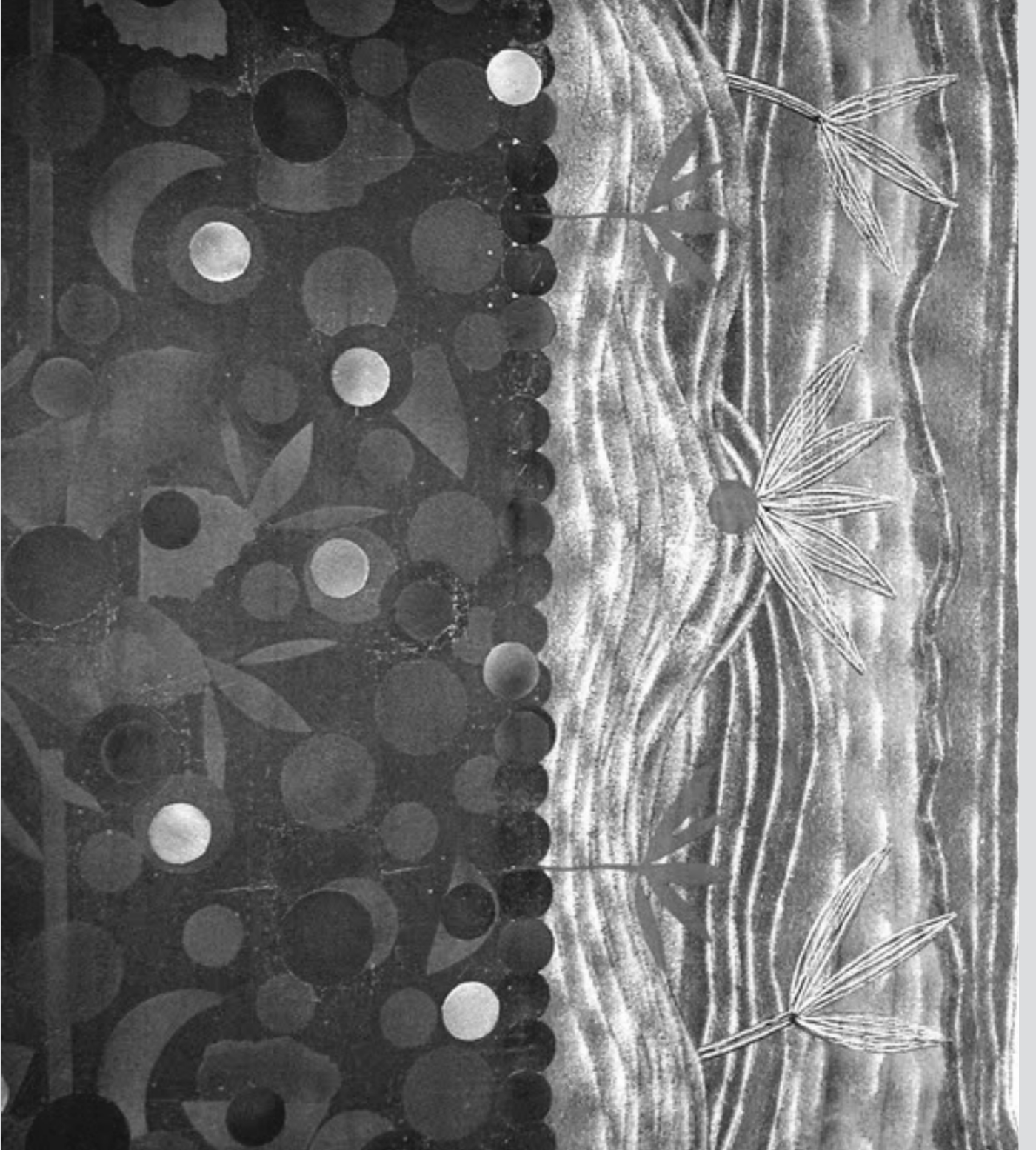
सिने संगीत में राजस्थान के कलावंतों की विरासत

❑

राजस्थान के लोगों ने देश के कोने कोने में फैल कर कारोबार में ही सर्वत्र अपना डंका नहीं बजाया है बल्कि कला के क्षेत्र में भी यहां के धरतीपुत्र कमतर नहीं रहे हैं। फ़िल्म संगीत में भी उनकी अनुपम विरासत हमें मिलती है। प्रति माह के दूसरे रविवार को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में होने वाले 'सुरसंगत' के समागम में दिसंबर माह में उन संगीतकारों पर विमर्श हुआ जिन्होंने सिने संगीत में अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराई। इसमें मारवाड़ राजस्थान के जोधपुर के बृजलाल वर्मा भी शामिल थे जिन्होंने हिंदुस्तान की दूसरी सवाक फिल्म 'शीरीं फरहाद' (1931) में संगीत दिया था।

राजस्थान से गये संगीतज्ञों में अधिकतर ने भले ही बड़ी व्यवसायिक सफलताएं नहीं पाई मगर अपने हुनर से सिने संगीत की ऐसी विरासतें छोड़ गए जिनको याद किए बिना हिंदुस्तानी सिने संगीत का इतिहास नहीं लिखा जा सकता।

खेमचंद प्रकाश, बसंत प्रकाश, गुलाम मोहम्मद, जमाल सेन, शंभू सेन, दिलीप सेन, समीर सेन, दुलाल सेन, शिवराम, दान सिंह, राजकमल, नारायणदत्त, बी एस कल्ला, मोतीराम, अली गनी और जगजीत सिंह जैसे उम्दा संगीतकारों में शास्त्रीय गुण था इसलिए उनके गानों में गहराई थी। समागम का विषय चुना था इस बार के मेज़बान ईश्वरदत्त माथुर ने जो स्वयं प्रदर्शन कला की बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं।

'चोरी चोरी आग सी दिल में लगा के चल दिए, हम तड़पते रह गए वो मुस्करा के चल दिए' (ढोलक/1951) जैसे लोकप्रिय गानों की गायिका सुलोचना कदम का समागम के एक दिन पहले ही 92 वर्ष की उम्र में मुंबई में निधन हो गया था। उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए हिंदी सिने संगीत के साथ मराठी लोक संगीत, खासकर 'लावणी' में उनकी श्रेष्ठता को रेखांकित किया गया। उन्हें इसी साल पद्मश्री अलंकरण दिया गया था। उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरुस्कार तथा महाराष्ट्र सरकार का लता मंगेशकर पुरुस्कार भी मिले थे।

पिछले दिनों हम से बिछड़ गई सिनेअभिनेत्री, तथा प्रसारक अमीन सयानी की टक्कर की रेडियो व टीवी एंकर, प्रस्तुतकर्ता तबस्सुम को भी याद किया गया।

जाने माने साहित्यकार जितेंद्र भाटिया तथा मानवाधिकार की प्रमुख आवाज़ मोहम्मद हसन जिनकी अंग्रेजी कविताओं के संग्रह का पिछले माह विमोचन हुआ भी इस बार समागम में मौजूद थे। ❑

जात नहीं जगदीश की,
हरि-जन की कहा होय।
जात पात के कीच में,
डूब मरी मत कोय।।

– कबीर

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 50 अंक : 1 पौष-माघ वि.सं. 2079 जनवरी, 2023

क्र म

आवरण : अमित कल्ला

आकाश के विराट को पा लेने की आकांक्षा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

अपनी बात

नव वर्ष, नई उमंग, नई आशा और नया उत्साह...

❑

नव वर्ष के उपलक्ष में हम अपनी शुभकामनाओं के साथ इस प्रार्थना को जोड़ देना चाहते हैं कि हमारा ध्यान राष्ट्रपिता के ताबीज पर रहे और हम उनके बताए रास्ते पर चले भी। आमीन ।

ना कोई रंज का लम्हा किसी के पास आए,
क्या करें कि नया साल सबको रास आए ।।

मित्रो आइए, हम सब नए वर्ष का, नए हर्ष और नए उत्कर्ष के साथ स्वागत करते हैं। नया साल पीछे मुड़कर देखने का मौका भी देता है और आगे की सुध लेने का अवसर भी। यह एक और खूबसूरत मौका है जब हम अपने भीतर झांककर भी देखते हैं आगे की राह पर भी नजर डालते हैं। हम जीवन को बेहतर बनाने और संवारने का एक मौका और देते हैं । अपने मुकाम को पाने का और सतत प्रयासरत रहने का । इस वर्ष **हम चिंता को दरकिनार कर चिंतन की बात करते हैं।**

हम खुद से एक संकल्प करते हैं कि हम किसी का अपमान नहीं करेंगे। किसी से बदला नहीं लेंगे। हम सब के प्रति आनंद के, विवेक के भाव, दया के बीज बोएंगे। सब के प्रति संवेदना से भर जाएंगे। हमें इन बीजों की देखभाल करनी है, इन्हें सींचना है ताकि यह एक वृक्ष बन जाएं और हम सबके दिलों को आनंद और प्यार से भर दें। सभी के प्रति करुणा और प्रेम का भाव रखते हुए हमें आरोग्य की साधना निरंतर करते रहना है। आज के मौजूदा हालात के लिए यह अमृत भी है और खजाना भी ।

महात्मा गांधी ने भी अपना सारा जीवन दुनिया में अहिंसा, प्रेम और शांति के बीज बोने में समर्पित कर दिया। बापू अहिंसा को करोड़ों लोगों का धर्म बनाना चाहते थे। बापू कहते थे– **नए वर्ष में जो तुमसे नहीं बोलते हैं उनसे बात करो। जो तुम्हारे घर नहीं आते हैं उनके घर जाओ। जो तुमसे नाराज हैं उनको राजी करो, उनसे मैत्री करो।** यह तुम उनके भले के वास्ते नहीं करोगे, बल्कि इसमें तुम्हारा अपना भला है। यह दुनिया लेनदार है मत भूलो कि हम इसके कर्जदार है। **आज हमें फिर से बापू के ताबीज को बार–बार याद करने की जरूरत है।** बापू का कहना था कि जब भी हम पर कोई स्वार्थ हावी हो जाए या हम किसी दुविधा में हों तो इस ताबीज का प्रयोग करें। हम सबसे गरीब और दुर्बल व्यक्ति का चेहरा याद करें और देखें कि जो कदम मैं उठाने जा रहा हूं क्या यह कदम उस गरीब के काम आएगा? क्या उसे इस कदम से कोई लाभ होगा? आइए, हम सब मिलकर बापू के सपनों को साकार करें। ❑ **प्रेम गुप्ता**

सामाजिक अपेक्षाओं से घिरा किशोर लड़कों का मन

❑

किशोरों की समस्याओं पर बात होती है तब अधिकतर किशोरियों के प्रति सरोकार ही सामने आते हैं। बहुतेरे लोग तो किशोरियों की समस्याओं के लिए किशोर बालकों की परवरिश को जिम्मेवार मानते हैं। प्रस्तुत सर्वेक्षण में पहली बार लड़कों के नज़रिये से उनके संसार और उनकी समस्याओं को जानने का प्रयास किया गया है। इसके नतीजे हमें किशोर लड़कों के प्रति नया नज़रिया भी देते हैं। ❑सं.

आशुतोष वाकणकर
एवं
ऋचा छाबरा
❑

आशुतोष वाकणकर एवं ऋचा छाबरा का यह सर्वेक्षण आज के नवयुवकों के प्रति जो धारणा आमजन में बन गयी है, उसे तोड़ता है। इस सर्वेक्षण में युवा लड़कियों और लड़कों दोनों के विचारों को सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने उजागर किया है। ❑सं.

युवा वर्ग की चिंताओं, चुनौतियों और रिश्तों में लड़कों की भूमिकाओं को समझने के लिए एक ऑनलाइन फ़ोकस ग्रुप तथा मुंबई, बेंगलुरु और दिल्ली में रहने वाले 14 से 25 वर्ष की आयु के प्रतिभागियों के माध्यम से हाल ही में एक अध्ययन किया गया।

प्रतिभागियों से पूछा गया कि वर्तमान में भारत में एक पुरुष या लड़का होने का क्या मतलब है? इसकी अध्ययनकर्ताओं को ज़बरदस्त प्रतिक्रिया मिली जिसमें कहा गया कि इसका सीधा अर्थ है ज़िम्मेदारी। लड़कियों के मामले में इसी सवाल का जवाब प्रतिबंध था।

लड़के और लड़कियों दोनों ने स्पष्ट किया कि लड़कों के लिए वयस्कता कैसे दबे पांव आती है – बचपन की मासूमियत से शुरू होकर लड़कपन आते-आते ज़िम्मेदारी का अहसास होने लगता है, और आख़िर में ये ज़िम्मेदारियां स्वीकार कर ली जाती हैं जो एक मर्द होने की निशानी होती हैं। 15 वर्ष के एक लड़के का कहना था कि पारिवारिक मामलों के लिए हमें ऐसा महसूस होता है कि पूरा परिवार (ज़िम्मेदारी) हमारे ही कंधों पर है। मैं दसवीं में पढ़ता हूं और अभी छोटा हूं। लेकिन मुझे यह अहसास होता रहता है कि मैं बड़ा हो रहा हूं। पर हम इसके बारे में किसी से बात नहीं कर सकते हैं हमें पहले से ही

इसकी समझ है कि आगे क्या करना है।

ज़्यादातर लड़कों के लिए पढ़ाई पूरी करने के बाद सबसे स्पष्ट विकल्प अपने पिता की जगह लेना और उनकी जिम्मेदारियों को अपने ऊपर लेना होता है। उनसे उम्मीद की जाती है कि वे कमाकर परिवार का भरण-पोषण करें। इसका दूसरा अर्थ परिवार के लिए खाना, माता-पिता के स्वास्थ्य संबंधी ख़र्चों की पूर्ति और घर के अन्य सभी ख़र्चों के लिए पर्याप्त धन कमाना है। अपने प्रतिभागियों के साथ की जाने वाली बातचीत और बहसों के दौरान अध्ययनकर्ताओं ने बार-बार जो बात सुनी वह यह थी कि एक 'अच्छे' बेटे को अपने भाई-बहन के लिए आदर्श बनना चाहिए। निम्न आय वाली पृष्ठभूमि से आने वाले लड़कों से भी यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने छोटे भाई-बहनों को लायक़ बनाए। इसका सीधा मतलब होता है अपने भाई की पढ़ाई पूरी करवाना और बहन की शादी की ज़िम्मेदारी उठाना।

लेकिन परिपक्वता एक दिन में नहीं आती है। कई लड़कों का कहना था कि कम उम्र में मिलने वाली उनकी आज़ादी पर धीरे-धीरे पारिवारिक भूमिकाओं की लगाम लगनी शुरू हो गई। पुरुषों और लड़कों से होने वाली अपेक्षाओं में अनकहे नियमों और पहले से तय लैंगिक भूमिकाओं का काफ़ी योगदान होता है।

अपने परिवार की देखभाल करने के लिए एक पुरुष को पैसे चाहिए। पैसे कमाने के लिए उसे एक स्थाई और अच्छी तनख़्वाह वाली नौकरी की ज़रूरत होती है। और, ऐसी एक नौकरी पाने के लिए उसे उचित समय और डोमेन में अच्छी शिक्षा की आवश्यकता होती है। इसके कारण आमतौर पर उनके पास केवल ऐसे दो या तीन पेशों का विकल्प होता है जिन्हें वे अपना सकते हैं। संगीत, कला, बॉडीबिल्डिंग और यहां तक कि ह्यूमैनिटीज़ के लिए भी किसी तरह की 'गुंजाइश' नहीं रह जाती है। इन्हें एक असफल जीवन की लम्बी यात्रा के रूप में माना जाता है। इसलिए लड़कों को विरले ही इस तरह की चीजों में भाग लेने की अनुमति दी जाती है।

नवयुवकों में हताशा के और अधिक बढ़ने का एक कारण यह भी है कि उन्हें भावनाओं का एक सीमित क्षेत्र मिलता है। एक अदृश्य लेकिन स्पष्ट सीमा यह बताती है कि उन्हें किस बात की अनुमति है और किसकी नहीं। ताक़त के प्रदर्शन की सराहना की जाती है। भय, उदासी और स्नेह अंत में क्रोध, अवमानना या रूढ़िवाद के रूप में व्यक्त होते हैं। वहीं आंसू एक छुपे हुए रहस्य जैसे हैं। 19 साल के एक प्रतिभागी का कहना था कि अगर एक लड़का रोना चाहता है तो उसे अपने बिस्तर पर तकिए से मुंह ढक कर और कम्बल के नीचे रोना पड़ता है ताकि उसे कोई देख न सके।

20 साल के एक अन्य लड़के के अनुसार समाज में इज्जत बनाई रखने के लिए लड़कों को मज़बूत दिखना होता है और उन्हें स्थितियों से निपटना आना चाहिए। अगर आप अपनी कमजोरी दिखाते हैं तो वे आपको सबसे कमजोर इंसान महसूस करवा देंगे। अक्सर ये दबी हुई भावनाएं तेज, आक्रामक और हिंसक व्यवहार का रूप ले लेती हैं। यहां यह सवाल खड़ा होता है कि समाज को लड़कों के आंसुओं से इतना डर क्यों लगता है? हो सकता है इसका संबंध उनकी प्रतिष्ठा से ज़्यादा समाज की ज़रूरतों से हो।

अध्ययनकर्ताओं ने जिन लड़कों से बात की, उनमें से कुछ ही अपने पिता को अपने जीवन के आदर्श के रूप में देखते मिले। हालांकि कुरेदने पर कई लड़कों ने अपने पिता के प्रभावों के बारे में बताया। शुरू में दोनों के बीच रिश्ते में एक दूरी रहती है और मां बच्चे की रक्षा और उसका पालन-पोषण करती है। अक्सर पिता की छवि एक रहस्यपूर्ण या अस्पष्ट व्यक्ति की होती है। वह रात में कुछ घंटे के लिए घर पर होता है और उस समय इतना अधिक थका होता है कि उसके पास अपने बेटे में दिलचस्पी लेने या उसके साथ समय बिताने की ताक़त नहीं होती है। एक निश्चित उम्र में एक दूसरे के बीच की दूरी और डर का यह रिश्ता एक दूसरे को समझने में बदल जाता है। ऐसा अक्सर तब होता है जब बेटा परिवार की ज़िम्मेदारियां उठाने लायक़ हो जाता है। इस तरह से मर्दानगी का यह विचार एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक पहुंचता है।

लड़कों पर दबाव बनाने वाली एक और अपेक्षा है 'लड़की के लायक़ बनना'। बेहतर होते शिक्षा-स्तर और आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण लड़कियां अपने जीवन में आने वाले पुरुषों के लिए पैमानों को ऊंचा कर रही हैं। लड़कों ने पाया है कि आज की लड़कियां और किशोरियां अपना ध्यान

रख सकती हैं, फ़ैसले ले सकती हैं, अपनी आवाज़ उठा सकती हैं और पुरुष की कमियों को लेकर कम सहिष्णु हैं। इसलिए वे किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश में होती हैं जो जीवन में उनसे बेहतर कर रहा हो।

तो कौन सी चीज़ लड़कों को लड़कियों से शादी करने योग्य बनाती है? अध्ययनकर्ताओं ने 22-24 साल के लड़कों के समूह के साथ बातचीत की। उन लड़कों का कहना था कि लड़कियां और उनके माता-पिता एक ही आदमी में सब कुछ चाहते हैं। कोई ऐसा जो सफल हो, अच्छा कमाता हो, अच्छे इलाके में रहता हो। उसके पास एक कार, अच्छी और प्रतिष्ठित नौकरी, माता-पिता और कुछ सभ्य दोस्त हों। अध्ययन करने वाले बताते हैं कि यह सूची लम्बी है और उनके अध्ययन में शामिल ज़्यादातर लड़के इस सूची से घबराए हुए थे।

एक लड़के के लिए तय किया हुआ है कि उसका अंतिम लक्ष्य 'घर बसाना' है। लेकिन इस तमग़े को हासिल करने के लिए दो पूर्व निर्धारित शर्तें हैं - भौतिक सफलता और इज्जतदार छवि। अध्ययन में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के अनुसार 'इज्जतदार छवि' का अर्थ था पढ़ाकू होना, सिगरेट और शराब न पीना और सफलता के रास्ते से भटकाने वाले लोगों से बच कर रहना। उनका कहना था कि इस दोषहीन जीवन से उनका विवाह एक अच्छे परिवार की लड़की से हो जाएगा।

हालांकि ये दबाव नए नहीं हैं लेकिन आज की तारीख़ में लड़कों के पास पिछली पीढ़ियों की तुलना में नई चीज़ें ढूंढने और पढ़ने के लिए अधिक साधन मौजूद हैं। जिम्मेदारियों को कुछ समय तक परे रखा जा सकता है। 18 साल की उम्र से ही काम शुरू करने वाले पिता अपने बेटों को एमबीए करने के लिए बढ़ावा दे रहे हैं। तब से अब तक रोज़गार के अवसरों में भी विस्तार हुआ है और इसके साथ ही प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। यह स्थिति न केवल लड़कों के लिए बदली है बल्कि अब पहले से अधिक पढ़ाई-लिखाई करने वाली और परीक्षाओं में बेहतरीन प्रदर्शन करने वाली लड़कियों के लिए भी बदली है। एक तरफ़ जहां रास्ते अधिक जटिल होते जा रहे हैं वहीं लक्ष्य भी लगातार बदल रहे हैं। अब मेहनती और कर्तव्य निभाने वाला पुरुष होना भर काफ़ी नहीं है। अपने परिवार (और साथी) से सम्मान पाने के लिए एक पुरुष को 'अपने काम में सबसे अच्छा' होना ज़रूरी है। अत्यधिक प्रतिष्ठित और दूसरों द्वारा प्रशंसित होना एक आदर्श सामाजिक स्थिति बन गई है। अक्सर मुकेश अम्बानी को आदर्श माना जाता है - एक ऐसा आदमी जो न केवल सफल है बल्कि उसकी समाज में प्रतिष्ठा भी है और वह एक सच्चा 'फ़ैमिली मैन' भी है।

अध्ययनकर्ता कहते हैं कि ये सभी उम्मीदें हमारे रोज़मर्रा के जीवन में इस कदर शामिल हैं कि हम अक्सर लड़कों को सही रास्ते पर रखने वाले बारीक तरीक़ों को देखने में असफल रहते हैं। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वह जो भी काम करें उसमें प्रतिस्पर्धा हो और वे हमेशा जीतें। यह एक आम धारणा है कि अगर वह इसका हिस्सा है तो उसे सबसे आगे होना चाहिए। इस प्रतिस्पर्धा को 'शर्माज़ी का बेटा सिंड्रोम' से और बढ़ा-चढ़ा दिया जाता है जिसमें माता-पिता लगातार अपने बेटों की तुलना दूसरे लड़कों से करते हैं। यहां तक कि रिश्तेदार भी उनके प्रदर्शन पर अपनी टीका-टिप्पणी करने से बाज नहीं आते हैं। यह तुलना शादी की उम्र तक आते-आते और ज़्यादा गहरी हो जाती है। जब लड़की का परिवार उसकी शादी के लिए एक उपयुक्त लड़का खोजने निकलता है तब नौकरी, वेतन और ज्ञान जैसी बातें ज़रूरी पैमाना होते हैं।

लड़कों का मूल्यांकन उनके कामकाज के अलावा उनके व्यक्तित्व से भी किया जाता है। बालों को ऐसे क्यों रखा है? क्या जंगली की तरह रह रहे हो? ऊंची आवाज़ में नहीं बोलना, बड़ों की बात सुननी है - यह तब भी सुनना पड़ता है जब हम बड़े हो चुके हैं। माता-पिता को इस बात की चिंता होती है कि दोस्त कुछ सिखा न दें, ये सब आदतें नहीं पालनी चाहिए।

उनके दोस्तों पर नज़र रखी जाती है ताकि वे 'बुरी संगत' में न पड़ जाएं। यह जांच-परख लड़कियों के साथ उनके रिश्तों तक पहुंच जाती है। माता-पिता और शिक्षक लड़कों को शक की नज़र से देखते हैं। बिना किसी टीका-टिप्पणी और पूर्वाग्रह के किसी लड़की के साथ एक साधारण दोस्ती रखना असम्भव है। 'मैंने प्यार किया' फ़िल्म आए तीस साल हो गए लेकिन आज भी हमारे युवाओं की मानसिकता इस तरह बनाई जाती है कि एक लड़का और एक लड़की कभी दोस्त नहीं हो सकते।

अनुशासन के इन निम्न-स्तरीय तरीक़ों में शारीरिक सजा चार-चांद लगाने का काम करती है। जिन लड़कों से बात की गई, उन्हें उनके माता-पिता या शिक्षकों ने कभी न कभी या तो थप्पड़ मारा था या पीटा था। सामाजिक संस्कार की जड़ें इतनी गहरी हैं कि कई लोगों का ऐसा मानना है कि उन्हें शारीरिक दंड का भागी होना ही चाहिए। वे अपनी 'अक्षमताओं' को उजागर कर इसे सही ठहराते हैं। कारण से मारते हैं, पढ़ाई नहीं की – तो मारना ठीक है। शिक्षक का तुम्हें मारना सही है। जब कोई तुम्हें पढ़ाएगा तो गुस्सा आएगा। यहां तक कि अभिभावकों का अपने बच्चों को पीटना भी सही है – वे हमें सिखा रहे हैं। समाज की पारंपरिक मांगों को पूरा करने में असफल होने वाले पुरुषों को अक्सर ही बेरोज़गार, निकम्मा, बर्बाद, कामचोर और नालायक जैसे तमग़े दिए जाते हैं। और ये सब नरम शब्द हैं जिन्हें लड़के अध्ययनकर्ताओं के साथ साझा करना चाहते थे; आमतौर पर तो उन्हें गालियां सुननी पड़ती हैं।

शायद 'लड़कों का गिरोह' ही वह जगह है जहां लड़के खुद होकर रह सकते हैं। यह आपस में मज़बूती से जुड़े हुए लड़कों का एक समूह होता है जहां वे एक-दूसरे के भाई/दोस्त/यार बन जाते हैं। वे बिना ज्यादा कुछ कहे गहरी समानुभूति और एक-दूसरे के जीवन की समझ पर आधारित एक अनोखी दोस्ती बनाते हैं। लड़कों के साथ हमारी बातचीत से अध्ययनकर्ताओं ने जाना कि लड़कों का किसी समूह में शामिल होने से उनकी पहचान तय होती है और इससे उनकी सोच बनती है और उन्हें सुरक्षा मिलती है। समूह का आपसी समीकरण उनके द्वारा एक दूसरे के जीवन में निभाई जाने वाली भूमिकाओं के बारे में बताता है। यह भूमिका एक लीडर या मेंटॉर आदि की हो सकती है। समूह का हर एक लड़का अपनी मर्दानगी साबित करना चाहता है। इसलिए जहां उनका यह गिरोह बाहरी दुनिया से उनकी सुरक्षा करता है वहीं समूह के भीतर एक दूसरे को चिढ़ाना, मिलकर उपद्रव करना और आपस में गाली देना वगैरह आम बातें हैं। यह सब बॉडी शेमिंग का रूप ले लेता है। लड़कों को उनके आकार, उंचाई, रंग, दाढ़ी-मूंछ आदि जैसी शारीरिक अपेक्षाओं के आधार पर चिढ़ाया जाता है। अक्सर मोटा, सूखा, गिट्टा, बौना, कलुआ और चिकना जैसी गालियों का इस्तेमाल कर उन्हें चिढ़ाया जाता है।

सबसे ख़राब स्थिति में यह समूह वही 'बुरी संगत' बन जाता है जिससे बचने के लिए माता-पिता उन्हें आगाह करते हैं। लड़कों से अपेक्षा की जाती है कि वे इस समूह की बदमाशियों से दूर रहें। इन बदमाशियों और ग़लतियों में धूम्रपान करना, शराब पीना, नशीले पदार्थों (ड्रग आदि) का सेवन करना और कभी-कभी लड़कियों का पीछा करना और हिंसा भी शामिल होता है। समाज की कभी ख़त्म न होने वाली पूछताछ एक प्रकार की निगरानी का काम करती है ताकि लड़के अपनी ज़िम्मेदारियों को गम्भीरता से लें। इसका इरादा इस तथाकथित योग्य लिंग को सफलता के लिए तैयार करना है। लेकिन नज़दीक से देखने पर हम पाते हैं कि ये अपेक्षाएं दरअसल वे बोझ हैं जिन्हें लड़कों को चाहे-अनचाहे उठाना पड़ता है। उससे मिलने वाली आज़ादी, छूट और विशेषाधिकार के साथ एक अनकही समझ जुड़ी होती है। एक लड़के की सफलता वह रिटर्न ऑन इनवेस्टमेंट है जिसमें परिवार अपना निवेश करता है। यह उनके बुढ़ापे का बीमा है। फोकस समूह चर्चाओं में लड़कियों और लड़कों दोनों द्वारा व्यक्त किया गया यह विचार था।

इसलिए, सफलता की उम्मीद ही काफी नहीं है। एक सफल फ़ैमिली मैन (पारिवारिक आदमी) ही आदर्श होता है। एक ऐसा पुरुष जो न केवल करियर में बेहतर कर रहा हो बल्कि अपने परिवार का भी ख़्याल रखने वाला हो। उपलब्धियों को हासिल करने वाला एक ऐसा पुरुष जो अब भी अपनी जड़ों से जुड़ा है। जहां इस अध्ययन से कई जवाब मिलते हैं वहीं अनेक ज़रूरी सवाल भी खड़े होते हैं। क्या लड़के जिस आज़ादी का आनंद लेते हैं वह सशर्त होती है? क्या लोगों की उम्मीदें लड़कों को उन पर खरा उतरने की चिंता से भर देती हैं? जब उन्हें कई तरह के फ़ायदे मिलते हैं तो वहीं क्या उन्हें मिलने वाले विशेषाधिकार के पीछे बेहतर करने का दबाव भी छुपा होता है? ऐसे हालत में क्या नवयुवकों और लड़कों से जुड़ी हमारी कुछ अवधारणाओं पर दोबारा सोचने का समय आ गया है? ❑

गांधी हैं विकल्प

❑

महात्मा गांधी का जिक्र आते ही और खासतौर पर गांधी जयंती के अवसर पर तो निश्चिय ही पूछा जाता है कि आज के संदर्भ में गांधी की प्रासंगिकता, दूसरे शब्दों में कहें तो अर्थवेत्ता क्या है? क्या उनके विचार और जीवन–क्योंकि स्वयं गांधी के अनुसार उनका जीवन ही उनका संदेश है–आज हमें कोई रास्ता दिखा पाने में समर्थ है?

इस सवाल में एक आत्म स्वीकृति भी अंतर्निहित है, क्योंकि अगर हम आज बनाए जा रहे वर्तमान और भविष्य में आश्वस्त होते तो इस सवाल के पूछे जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं महसूस होती। इस सवाल की जरूरत ही इस बात का प्रमाण है कि हम आज जिस रास्ते पर चल रहे हैं, उसकी सार्थकता या प्रासंगिकता पर हम भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। किसी विकल्प की तलाश की आवश्यकता तभी महसूस होती है, जब हमारी नीतियां और कार्यक्रम किसी वांछित भविष्य तक ले जाने में असफल होने लगते हैं। इसलिए, महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता पर विचार आने से पहले यह देख लेना जरूरी होगा कि वह कौन–सी व्याधि या व्याधियां हैं, जिनके वैकल्पिक इलाज के लिए गांधी कुछ दवाएं सुझा सकते हैं और जब हम कहते हैं कि आज हम एक विश्व समाज हैं तो यह मानना भी संगत कहा जाएगा कि जो विकल्प महात्मा गांधी सुझाते हैं, वह केवल भारत के लिए ही नहीं, पूरे विश्व–समाज के लिए मुफीद होगा।

विकास के प्रचलित रास्ते पर चलते हुए हम आज जहां तक पहुंचे हैं, वहां दो समस्याएं प्रमुख रूप से उभर कर आई हैं, जिन्हें लेकर दुनियाभर के विचारक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक और राजनेता समान रूप से चिंतित हैं। ये दो समस्याएं हैं–आर्थिक असमानता में वृद्धि तथा पर्यावरणीय–पारिस्थितिकीय असंतुलन। यहां यह समझ लेना जरूरी है कि ये समस्याएं, आर्थिक वृद्धि के लिए अपनाए गए रास्ते की असफलता के बजाय, जैसा बेरी कॉमनर ने कहा है, उसकी सफलता के परिणाम हैं। हम यह नहीं कह सकते कि उत्पादन–वृद्धि नहीं हुई है, जो विकास की हमारी प्रचलित अवधारणा का लक्ष्य रहा है, लेकिन इस उत्पादन–वृद्धि के लिए जिन प्रक्रियाओं को अपनाया गया, उनसे लक्ष्य–प्राप्ति के साथ–साथ–बल्कि उनके परिणाम

❑
नन्दकिशोर आचार्य

गांधीवादी विचारधारा के सुप्रसिद्ध लेखक, विचारक और चिंतक नन्दकिशोर आचार्य ने महात्मा गांधी के विचारों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता की विवेचना के साथ–साथ राजनैतिक विवादों की थाह लेने का सार्थक प्रयास किया है। इस संदर्भ में आचार्य जी की अहिंसा दर्शन, गांधी विचार, मानवाधिकार, शिक्षा संस्कृति विचार, गांधी हैं विकल्प आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत है गांधी हैं विकल्प पुस्तक का एक लेख।❑ सं.

स्वरूप कुछ ऐसी नई समस्याएं पैदा हो गई, जिन्होंने विकास की हमारी प्रचलित अवधारणा पर ही पुनर्विचार के लिए बाध्य कर दिया है। ये समस्याएं, मूलत: इस प्रौद्योगिकी के आवश्यक परिणाम हैं, जिसे हमने उत्पादन-वृद्धि के लिए अपनाया, क्योंकि, अंतत: प्रौद्योगिकी ही प्रकृति और पारिस्थितिकी से हमारे संबंधों को तय करती है और स्वामित्व व लाभ के वितरण की प्रक्रिया को भी। जिस बड़े पैमाने की प्रौद्योगिकी को हमने अपनाया, उसी का परिणाम है स्वामित्व और प्रबन्धन का केंद्रीकरण, श्रम के अवसरों अर्थात् रोजगार में कमी तथा पर्यावरण-प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के तेजी से दोहन के फलस्वरूप उनके भंडार की समाप्ति का आसन्न खतरा। क्या महात्मा गांधी इन समस्याओं का कोई ऐसा हल सुझा सकते हैं, जो उत्पादन की मात्रा को सुनिश्चित करने के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि कर सके-क्योंकि पूर्ण समानता तो वह आदर्श है, जिसकी ओर देखते हुए हम संभव समानता की ओर बढ़ते हैं-तथा जो प्रकृति के अस्वस्थ दोहन पर आधारित न हो।

महात्मा गांधी इसके समाधान स्वरूप 'स्वदेशी' प्रौद्योगिकी का सुझाव देते हैं। स्वदेशी का मतलब है स्थानीय संसाधनों से स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति-इसमें प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ प्रौद्योगिकीय और श्रम संसाधन भी शामिल हैं। इसका आवश्यक परिणाम होता है श्रमिक - परिवार या छोटे श्रमिक-समूह का अपनी प्रौद्योगिकी और श्रम पर स्वामित्व व स्थानीय स्तरों पर रोजगार के अवसरों में वृद्धि। उत्पादन स्थानीय जरूरतों के लिए होने के कारण उसके परिवहन, विक्रय और प्रबंधन आदि की लागत में कमी होती है और लाभ के केंद्रीकरण की संभावना अत्यंत सीमित हो जाने के कारण आर्थिक असमानता में निरंतर कमी होती जाती है। यह मानना एक भ्रम है कि इससे उत्पादन कम होने लगेगा, क्योंकि यदि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुमाकर के आंकड़ों पर भरोसा करें तो स्पष्ट हो जाता है कि केवल साढ़े तीन प्रतिशत सामाजिक समय ही वास्तविक उत्पादन में लगता है। यहां इस प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य की भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व पूरी दुनिया के निर्यात व्यापार का लगभग एक-चौथाई केवल भारत का उत्पादन पूरा करता था, जो इसी स्वदेशी प्रौद्योगिकी और कुल सामाजिक समय अर्थात सबके लिए रोजगार के उपयोग की संभावना पर आधारित था। आधुनिक प्रौद्योगिकी की सारी कुशलता मानव-श्रम अर्थात् रोजगार में कमी तथा प्राकृतिक संसाधनों के अस्वस्थ दोहन पर आधारित है। इस प्रक्रिया से उत्पन्न बीमारी से तभी छुटकारा पाया जा सकता है, जब हम इस प्रक्रिया के विकल्प को अपनाने के लिए प्रस्तुत हों, जिसका प्रस्ताव महात्मा गांधी और उनके विचारों से प्रेरित अनेक पूर्वी-पश्चिमी विचारक और अर्थशास्त्री कर रहे हैं। अमर्त्य सेन विकास का तात्पर्य मनुष्य की स्वतंत्रता मानते हैं। यह स्वतंत्रता केवल तभी पायी जा सकती है, यदि हम उसे केवल अंतिम मंजिल न मान कर उसकी प्रक्रिया में ही उसे समाहित कर सकें, जिसकी पूरी संभावना 'स्वदेशी' की अवधारणा से प्रेरित प्रौद्योगिकी और उत्पादन-प्रक्रिया में दिखाई देती है।

विकास के प्रचलित रास्ते पर चलते हुए हम आज जहां तक पहुंचे हैं, वहां दो समस्याएं प्रमुख रूप से उभर कर आई हैं, जिन्हें लेकर दुनियाभर के विचारक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक और राजनेता समान रूप से चिंतित हैं।
ये दो समस्याएं हैं- आर्थिक असमानता में वृद्धि तथा पर्यावरणीय-पारिस्थितिकीय असंतुलन।

राजनीतिक-सत्ता के केंद्री - करण से उपजी समस्याएं दरअसल, आर्थिक केंद्रीकरण के आवश्यक परिणाम हैं। आर्थिक केंद्रीकरण की जरूरतें राजनीतिक केंद्रीकरण के बिना पूरी नहीं की जा सकतीं। आज देश के वन्य-प्रदेशों में जो हिंसा-चाहे वह राज्य की कानूनी आर्थिक हिंसा की प्रतिक्रिया में नक्सलवादी हिंसा और फिर उसकी प्रतिक्रिया में राज्य की सैन्यवादी हिंसा हो या आंतरिक

उपनिवेशीकरण से उत्पन्न संरचनात्मक हिंसा–दिखाई दे रही है, उसकी जड़ में आर्थिक केंद्रीकरण ही दिखाई देता है। यदि आज सरकार को भूमि अधिग्रहण के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसा फैसला करना पड़ रहा है जिससे गांवों की अपनी सहमति के बिना उनकी भूमि का अधिग्रहण नहीं किया जा सके तो यह कहीं इस बात का स्वीकार है कि आर्थिक केंद्रीकरण के लिए आज तक राज्य लोकतांत्रिक आकांक्षाओं व अधिकारों का दमन करता रहा है। महात्मा गांधी इसलिए स्वदेशी पर आधारित एक विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था की जरूरत के मुताबिक एक राजनीतिक विकेंद्रीकरण का प्रस्ताव करते हैं, जो राज्य की हिंसक शक्ति का एक अहिंसक विकल्प है।

इसे अव्यावहारिक मानना पुन: एक भ्रम होगा क्योंकि देश की श्रम–शक्ति का बहुलांश यदि उपयोग में नहीं लाया जा रहा है और वर्तमान प्रौद्योगिकी और उत्पादन–प्रक्रिया में रोजगार के अवसरों के बढ़ने अर्थात् इस श्रम–शक्ति के उपयोग की संभावना नगण्य है तो हमें ऐसा ही विकल्प खोजना होगा जो इस श्रम–शक्ति और मानव–ऊर्जा का उत्पादन उपयोग कर सके–मानव–स्वतंत्रता को पुष्ट करते हुए। यही स्वदेशी है और यही है स्वराज।

यहां इस बात की ओर भी ध्यान दिया जाना वांछनीय होगा कि महात्मा गांधी आर्थिक प्रक्रिया में केवल उत्पादन–प्रक्रिया को ही नहीं उपभोग–प्रक्रिया को भी शामिल करते हैं। वह उपभोक्ता को भी यह सुझाव देते हैं कि वह ऐसी किसी वस्तु का उपभोग नहीं करे, जो उसकी आवश्यकता नहीं है–आज हो रहा प्रकृति विरोधी अंधाधुंध उपभोग वास्तविक आवश्यकताओं के बजाय कृत्रिम जरूरतों पर आधारित है। अल्फ्रेड मार्शल जैसे अर्थशास्त्री की प्रसिद्ध अवधारणा ही यही है कि उत्पादन को बढ़ाते जाना होगा, जिसका स्वाभाविक परिणाम पर्यावरणीय प्रदूषण और पारिस्थितिकीय असंतुलन के साथ–साथ उपभोक्ता के मानसिक–शारीरिक स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ भी है इसलिए, यह सुझाव उपभोक्ता के आर्थिक हित के साथ उसके मानसिक–शारीरिक और नैतिक आध्यात्मिक हितों की भी सुरक्षा करता है।
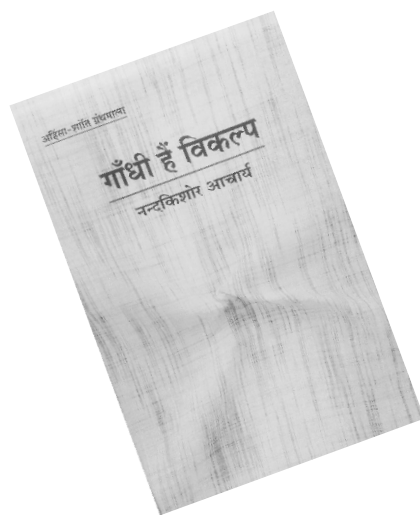
यदि उपभोक्ता हिंसक प्रक्रियाओं से उत्पादित वस्तुओं को खरीदना बंद कर दे तो ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के लिए अपनाई जाने वाली हिंसक और प्रकृति–विरोधी प्रक्रियाओं को स्वत: ही बंद कर देना पड़ेगा।

महात्मा गांधी उपभोक्ता से यह भी आशा करते हैं कि वह ऐसी किसी वस्तु का उपभोग नहीं करेगा, जिसका उत्पादन हिंसा–अर्थात् किसी भी प्रकार के आर्थिक शोषण, राजनीतिक दमन या सामाजिक उत्पीड़न आदि–पर आधारित हो। स्वराज यहां एक व्यक्तिगत अवधारणा और व्यवहार भी बन जाता है। यदि उपभोक्ता हिंसक प्रक्रियाओं से उत्पादित वस्तुओं को खरीदना बंद कर दे तो ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के लिए अपनाई जाने वाली हिंसक और प्रकृति–विरोधी प्रक्रियाओं को स्वत: ही बंद कर देना पड़ेगा। सरकारें अंतरराष्ट्रीय दबाव में भूमंडलीकरण वाली आर्थिक नीतियों को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो भी जाए तो अपने नागरिकों को उस माल को खरीदने के लिए बाध्य नहीं कर सकतीं।

यदि उपभोक्ता समूह ऐसे माल को न खरीदने का फैसला कर ले तो वह सरकारी नीतियों के बावजूद अपने को उससे बड़ी हद तक मुक्त रख सकता है, यह एक प्रकार का आर्थिक सत्याग्रह होगा और आखिर सत्याग्रह ही तो गांधी के जीवन और विचारों की जड़ है। स्वदेशी और स्वराज उसी पर टिके हैं। एक विशाल आर्थिक–राजनीतिक तंत्र

के सम्मुख असहाय महसूस करना–जो आजकल हम सभी महसूस करते हैं– मनुष्य की उस स्वतंत्रता और गरिमा के खिलाफ है, जिसका उद्घोष मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र में किया गया है।

महात्मा गांधी जिस उत्पादन–प्रक्रिया और उपभोग की अवधारणा का प्रस्ताव करते हैं, वह मनुष्य को अपनी उस स्वतंत्रता और व्यक्तित्व की गरिमा अर्जित करने की ओर ले जाता है, जो आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत विकास की वैकल्पिक अवधारणा का लक्ष्य माना गया है, जो महात्मा गांधी के शब्दों में स्वदेशी, स्वराज और सत्याग्रह है और जो सामूहिक तो है ही, व्यक्तिगत स्तर पर भी पाए जा सकते हैं।❑

मैं अपने भीतर किसी अनन्य दैवी शक्ति का कोई दावा नहीं करता। मैं पैगम्बरी का दावा नहीं करता। मैं तो एक विनम्र सत्यशोधक हूं और सत्य की ही प्राप्ति के लिए कृतसंकल्प हूं। ईश्वर के साक्षात्कार के लिए मैं कितने भी बड़े त्याग को अधिक नहीं मानता। मेरे समस्त कार्यकलाप, चाहे उन्हें सामाजिक कहा जाए या राजनीतिक, मानवीय अथवा नैतिक, उसी लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अभिमुख हैं।
और चूंकि मैं जानता हूं कि ईश्वर का वास उच्च और शक्ति–संपन्नों की अपेक्षा प्राय: अपने अतिसाधारण–निचले प्राणियों के बीच अधिक है, इसलिए मैं इन्हीं के स्तर पर आने के लिए संघर्षरत हूं। यह मैं उनकी सेवा किए बगैर नहीं कर सकता। इसलिए मुझे दलित वर्गों की सेवा की लालसा रहती है। और चूंकि मैं राजनीति में प्रवेश किए बगैर यह सेवा नहीं कर सकता इसलिए मैं राजनीति में हूं। इस प्रकार मैं कोई स्वामी नहीं हूं। मैं तो भारत और उसके जरिए मानवता का एक संघर्षरत, भूल–चूक करने वाला और विनम्र सेवक हूं। ❑

महात्मा गांधी (यंग इंडिया, 11.06.1924)

वस्त्रधारी वानर !

❑

डॉ. अशोक अनित्य

क्या
गिरगिट की तरह
रंग बदलते हो ?

देख
स्वार्थप्रेरित
त्वरित
बदलते व्यवहार को
कहा जाता है
व्यंग्य में -
मगर
सुन वार्तालाप यह
है गिरगिट
हैरान–परेशान...

मैं तो
बदलता नहीं
अपना रंग,
बदलते हैं
जिस तरह
जिस के लिए
ये वस्त्रधारी वानर ! ❑

स्वागत ! नव वर्ष

स्वागत! जीवन के नवल वर्ष
आओ, नूतन-निर्माण लिये,
इस महा जागरण के युग में
जाग्रत जीवन अभिमान लिये;

दीनों दुखियों का त्राण लिये
मानवता का कल्याण लिये,
स्वागत! नवयुग के नवल वर्ष!
तुम आओ स्वर्ण-विहान लिये।

संसार क्षितिज पर महाक्रान्ति
की ज्वालाओं के गान लिये,
मेरे भारत के लिये नई
प्रेरणा नया उत्थान लिये;

मुर्दा शरीर में नये प्राण
प्राणों में नव अरमान लिये,
स्वागत!स्वागत! मेरे आगत!
तुम आओ स्वर्ण विहान लिये!

युग-युग तक पिसते आये
कृषकों को जीवन-दान लिये,
कंकाल-मात्र रह गये शेष
मजदूरों का नव त्राण लिये;

श्रमिकों का नव संगठन लिये,
पद दलितों का उत्थान लिये;
स्वागत!स्वागत! मेरे आगत!
तुम आओ स्वर्ण विहान लिये!

सत्ताधारी साम्राज्यवाद के
मद का चिर-अवसान लिये,

दुर्बल को अभयदान,
भूखे को रोटी का सामान लिये;

जीवन में नूतन क्रान्ति
क्रान्ति में नये-नये बलिदान लिये,
स्वागत! जीवन के नवल वर्ष
आओ, तुम स्वर्ण विहान लिये! ❑

- सोहनलाल द्विवेदी

आओ, नूतन वर्ष मना लें!

गृह-विहीन बन वन-प्रयास का
तप्त आँसुओं, तप्त श्वास का,
एक और युग बीत रहा है, आओ इस पर हर्ष मना लें!
आओ, नूतन वर्ष मना लें!

उठो, मिटा दें आशाओं को,
दबी छिपी अभिलाषाओं को,
आओ, निर्ममता से उर में यह अंतिम संघर्ष मना लें!
आओ, नूतन वर्ष मना लें!

हुई बहुत दिन खेल मिचौनी,
बात यही थी निश्चित होनी,

आओ, सदा दुखी रहने का जीवन में आदर्श बना लें!
आओ, नूतन वर्ष मना लें!❑
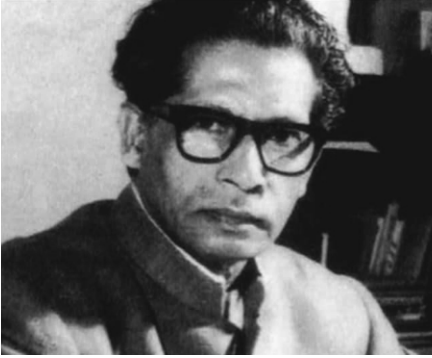
– हरिवंशराय बच्चन

नवल हर्षमय नवल वर्ष यह

नवल हर्षमय नवल वर्ष यह,
कल की चिन्ता भूलो क्षण भर;
लाला के रँग की हाला भर
प्याला मदिर धरो अधरों पर!
फैन–वलय मृदु बाँह पुलकमय
स्वप्न पाश सी रहे कंठ में,
निष्ठुर गगन हमें जितने क्षण
प्रेयसि, जीवित धरे दया कर! ❑

– सुमित्रानंदन पंत

नए साल की शुभकामनाएं!

खेतों की मेड़ों पर धूल भरे पाँव को
कुहरे में लिपटे उस छोटे से गाँव को
नए साल की शुभकामनाएं!

जाँते के गीतों को बैलों की चाल को
करघे को कोल्हू को मछुओं के जाल को
नए साल की शुभकामनाएँ!

इस पकती रोटी को बच्चों के शोर को
चौंके की गुनगुन को चूल्हे की भोर को
नए साल की शुभकामनाएँ!

वीराने जंगल को तारों को रात को
ठंडी दो बंदूकों में घर की बात को
नए साल की शुभकामनाएँ!

इस चलती आँधी में हर बिखरे बाल को
सिगरेट की लाशों पर फूलों से ख़याल को
नए साल की शुभकामनाएँ!

कोट के गुलाब और जूड़े के फूल को
हर नन्ही याद को हर छोटी भूल को
नए साल की शुभकामनाएँ!

उनको जिनने चुन–चुनकर ग्रीटिंग कार्ड लिखे
उनको जो अपने गमले में
चुपचाप दिखे
नए साल की
शुभकामनाएँ!❑

– सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

हमारे बंधन–मुक्त संविधान के निदेशक सिद्धांत

❑

❑
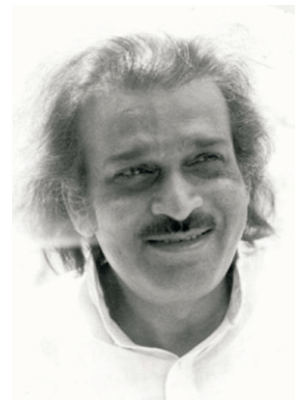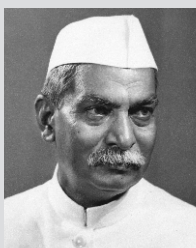
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जो बाद में भारत के पहले राष्ट्रपति बने, ने 26 नवम्बर 1949 को संविधान पर अपने विचार रखे जो कि संविधान की आत्मा, सार व प्रारूप में शब्दों के चयन को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। उनके विचारों के महत्वपूर्ण अंश अधिवक्ता सूर्य प्रताप सिंह राजावत के सौजन्य से। ❑ सं.

सबसे पहला प्रश्न यह है और इस पर वाद–विवाद हो चुका है कि यह संविधान किस श्रेणी का है। मैं स्वयं उस श्रेणी को कोई महत्व नहीं देता हूं जो इस संविधान को दी जायेगी फिर चाहे आप उसे फेडरल संविधान कहें या एकात्मक शासन तंत्र का संविधान कहें या और कुछ कहें। जब तक संविधान हमारे प्रयोजनों की पूर्ति करता है तब तक इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हमारे लिये यह कोई बन्धन नहीं है कि हम एक ऐसा संविधान रखें जो संसार के संविधानों की ज्ञात श्रेणियों के पूर्णतया अनुरूप हो। हमें अपने देश के इतिहास के कुछ तथ्यों को लेना पड़ेगा और इतिहास के तथ्यों जैसी इन वास्तविकताओं का इस संविधान पर कोई कम प्रभाव नहीं पड़ा है।

हम एक गणराज्य बना रहे हैं। भारत में प्राचीन काल में गणराज्य थे, पर यह व्यवस्था 2000 वर्ष पूर्व थी, इससे भी अधिक समय पूर्व थी और वे गणराज्य बहुत छोटे–छोटे थे। जिस गणराज्य की हम अब स्थापना कर रहे हैं उस गणराज्य जैसा गणराज्य हमारे यहां कभी नहीं था, यद्यपि उन दिनों में भी और मुगल काल में भी ऐसे साम्राज्य थे जो देश के विशाल भागों पर छाये हुए थे। इस गणराज्य का राष्ट्रपति एक निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। हमारे यहां ऐसे बड़े राज्य का निर्वाचित मुखिया कभी नहीं हुआ जिसके अन्तर्गत भारत का इतना बड़ा क्षेत्र आ जाता है। और यह प्रथम बार ही हुआ है कि देश के तुच्छ से तुच्छ और निम्न से निम्न नागरिक को भी यह अधिकार मिल गया है कि वह इस महान राज्य के राष्ट्रपति या मुखिया के योग्य हो, जो आज संसार के विशालतम राज्यों में गिना जाता है।

हमने वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की है जिसके द्वारा प्रान्तों में विधान–सभाओं और केन्द्र में लोक

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

सभा का निर्वाचन होगा। कुछ लोगों ने इस बात के प्रति संदेह किया है कि वयस्क मताधिकार बुद्धिमानी की बात होगी। यद्यपि मैं इसे एक ऐसे प्रयोग के रूप में देख रहा हूं जिसके परिणाम के सम्बन्ध में आज कोई भी व्यक्ति भविष्यवाणी नहीं कर सकता है पर मैं इससे आश्चर्यचकित नहीं हुआ हूं। मैं एक ग्रामीण व्यक्ति हूं और यद्यपि अपने कार्य के कारण मुझे बहुत अधिक समय तक नगरों में रहना पड़ा है परन्तु मेरी जड़ अब भी वहीं है। अतः मैं उन ग्रामीण व्यक्तियों से परिचित हूं जो इस महान निर्वाचक-मंडल का एक बड़ा भाग होगा। मेरी सम्मति में हमारे इन लोगों में बुद्धि और साधारण ज्ञान है। उनकी एक संस्कृति भी है जिसको आज की आधुनिकता में रंगे हुए लोग चाहे न समझें पर वह एक ठोस संस्कृति है। वे साक्षर नहीं हैं और उनमें पढ़ने-लिखने का कौशल नहीं है। पर इस बात में मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि यदि उनको वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे अपने हित तथा देश के हित के लिये उपक्रम कर सकते हैं। कुछ बातों में तो मैं वास्तव में उनको किसी भी कारखाने के श्रमिक से भी अधिक चतुर समझता हूं जो अपने व्यक्तित्व को खो देता है और जिस यंत्र का उसे संचालन करना पड़ता है न्यूनाधिक रूप से वह उसी यंत्र का एक भाग बन जाता है। अतः मेरे मन में इस बात के प्रति कोई सन्देह नहीं है कि यदि उनको वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे केवल निर्वाचन की बारीकियों को ही नहीं समझेंगे बल्कि बुद्धिमानी पूर्वक अपना मत भी देंगे और इसलिये इनके कारण भविष्य के प्रति मुझे कोई शंका नहीं है। अन्य उन लोगों के प्रति मैं यह बात नहीं कह सकता हूं जो नारों द्वारा तथा उनके सामने अव्यावहारिक कार्यक्रमों के सुन्दर चित्र रखकर उन पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। फिर भी मेरा यह विचार है कि उनका पुष्ट साधारण ज्ञान वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक समझने में उनकी सहायता करेगा। अतः हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे विधान-मंडलों में ऐसे सदस्य होंगे जो वास्तविकता से परिचित होंगे और जो वस्तुस्थिति पर यथार्थ दृष्टिकोण से विचार करेंगे।
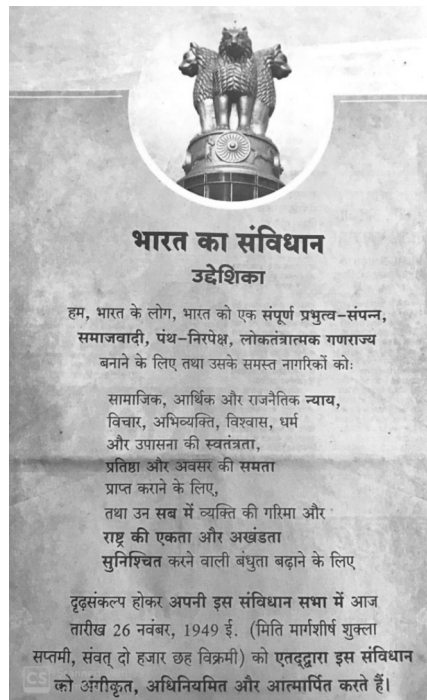
संविधान में हमने एक न्यायपालिका की व्यवस्था की है जो स्वाधीन होगी। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त करने के लिये इससे अधिक कुछ और सुझाव देना कठिन है। और न्यायपालिका को भी किसी बाह्य प्रभाव से मुक्त रखने का संविधान में प्रयास किया गया है। हमारा एक अनुच्छेद राज्य की सरकारों के लिये कार्यपालिका के कृत्यों को न्यायिक कृत्यों से पृथक करने के विषय को प्रस्तुत करने के कार्य को सरल कर देता है और उस दण्डाधिकारी न्यायालय को, जो आपराधिक मामलों पर विचार करता है, व्यवहार-न्यायालयों के आधार पर लाने के कार्य को सरल कर देता है।

कुछ विशेष विषयों को निपटाने के लिये हमारे संविधान में कुछ स्वाधीन अभिकरणों की योजना की गई है। अतः इसमें दोनों संघ और राज्यों के लिये लोक सेवा आयोगों की व्यवस्था की गई है और इन आयोगों को स्वतंत्र आधार पर रखा है जिससे कि कार्यपालिका से प्रभावित हुए बिना ये अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकें।

एक और स्वाधीन प्राधिकारी नियंत्रण-महालेखा परीक्षक है जो हमारी वित्त व्यवस्था की देखभाल करेगा और इस बात पर ध्यान रखेगा कि भारत या किसी भी राज्य के आगमों के किसी अंश का बिना समुचित प्राधिकार के किसी प्रयोजनों या मदों के लिये उपयोग न हो और जिसका यह कर्तव्य होगा कि वह हमारे हिसाब-किताब को ठीक रखे।

इस संविधान की 5 और 6 अनुसूचियों में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिये विशेष उपबन्ध रखे गये हैं। आसाम को छोड़कर अन्य राज्यों की जनजातियों और जनजाति-क्षेत्रों के विषय में जनजाति मंत्रणादात्री परिषद् के द्वारा जन-जातियां प्रशासन पर प्रभाव

डाल सकेंगी। आसाम की जनजातियों के और जनजाति क्षेत्रों के विषय में जिला परिषदों और स्वायत्त शासी प्रादेशिक परिषदों के द्वारा उनको अधिक व्यापक शक्तियां दे दी गई हैं। राज्य मंत्रालयों में एक मंत्री के लिये भी आगे और उपबन्ध है जिस पर जन–जातियों और अनुसूचित जातियों के कल्याण का भार होगा और एक आयोग उस रीति के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा जिसके अनुसार इन क्षेत्रों पर प्रशासन किया जाता है। इस उपबन्ध का बनाना इस कारण आवश्यक था कि जनजातियां पिछड़ी हुई हैं और उनको रक्षा की आवश्यकता है और इस कारण भी कि अपनी समस्याओं को सुलझाने की उनकी अपनी ही रीति है और जन–जातिवत जीवन बिताने का उसका अपना ढंग है। इन उपबन्धों ने उनको पर्याप्त संतोष प्रदान किया है।

संघ और राज्यों के प्रशासी तथा अन्य कार्यों के सब रूपों में संघ और राज्यों में परस्पर शक्ति तथा प्रकार्यों के विभाजन संबंधी विषय को इस सविधान में बड़े विवरणपूर्ण ढंग से लिया गया है।

उन समस्याओं में से एक समस्या जिसे सुलझाने में संविधान सभा ने बहुत समय लिया वह देश के राजकीय प्रयोजनों के लिये भाषा सम्बन्धी समस्या है। यह एक स्वभाविक इच्छा है कि हमारी अपनी भाषा होनी चाहिये और देश में बहुत सी भाषाओं के प्रचलित होने के कारण कठिनाइयों के होते हुए भी हम हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में स्वीकार कर सके हैं जो एक ऐसी भाषा है जिसे देश में सबसे अधिक लोग समझते हैं। जब हम यह विचार करते हैं कि स्विजरलैंड जैसे एक छोटे से देश में तीन राजभाषाओं से कम राजभाषा नहीं हैं और दक्षिणी अफ्रीका में दो राजभाषाएं हैं तो मैं इस विनिश्चय को एक बड़े ही महत्वपूर्ण विनिश्चय के रूप में देखता हूं। देश को एक राष्ट्र के रूप में संघटित करने के दृढ़ निश्चय की ओर सुविधा–क्षमता की भावना इस बात से प्रकट होती है कि वे लोग जिन की भाषा हिन्दी नहीं है उन्होंने स्वेच्छापूर्वक इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया है। अब भाषा के आरोपण करने का प्रश्न ही नहीं है। अंग्रेजी राज्य में अंग्रेजी और मुस्लिम राज्य में फारसी कचहरी और राज की भाषायें थीं। यद्यपि लोगों ने इन भाषाओं का अध्ययन किया और उनमें विशेष योग्यता प्राप्त की, पर कोई यह दावा नहीं कर सकता है कि उनको इस देश के अधिकांश लोगों ने स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किया। अपने इतिहास में पहली बार इस समय हमने एक भाषा स्वीकार की है जिसका समस्त राजकीय प्रयोजनों के लिये सारे देश में प्रयोग होगा और मुझे यह आशा करने दीजिये कि यह उन्नत होकर एक ऐसी राष्ट्रीय भाषा का रूप धारण करे जिसमें सबको समान रूप से गौरव मिले, और इसके साथ–साथ प्रत्येक क्षेत्र को अपनी निजी भाषा की उन्नति करने की स्वतन्त्रता ही नहीं होगी वरन् उसको उस भाषा को उन्नत बनाने के लिये प्रोत्साहित भी किया जायेगा जिसमें उसकी संस्कृति और परम्परा पवित्र रूप से स्थापित है। व्यावहारिक कारणों वश इस अन्तर्कालीन समय में अंग्रेजी का प्रयोग अनिवार्य समझा गया और इस विनिश्चय से किसी को निराश नहीं होना चाहिये जिसको व्यावहारिक विचारों के आधार पर किया गया है। अब यह इस समूचे देश का कर्तव्य है और विशेषकर उनका जिनकी भाषा हिन्दी है कि इसको ऐसा रूप दें और इस प्रकार से विकसित करें कि यह एक ऐसी भाषा बन जाये जिसमें भारत की सामाजिक संस्कृति की पर्याप्त तथा सुन्दर रूप में अभिव्यक्ति हो सके।

संविधान में हमने एक न्यायपालिका की व्यवस्था की है जो स्वाधीन होगी। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त करने के लिये इससे अधिक कुछ और सुझाव देना कठिन है। और न्यायपालिका को भी किसी बाह्य प्रभाव से मुक्त रखने का संविधान में प्रयास किया गया है।

हमारे संविधान की और महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें किसी अधिक परेशानी के बिना संशोधन किया जा सकता है। यहां तक कि संविधानिक संशोधन भी ऐसे कठिन नहीं हैं जैसे कुछ अन्य देशों में हैं। और इस संविधान में बहुत से उपबन्धों का संशोधन तो साधारण अधिनियमों द्वारा संसद कर सकती है। एक ऐसा उपबन्ध

रखा गया था जिसमें यह प्रस्थापित किया गया था कि इस संविधान के प्रवृत्त होने के बाद पांच वर्ष तक इसमें संशोधन करना सरल बना दिया जाये पर इस कारण ऐसा उपबन्ध अनावश्यक हो गया कि इस संविधान में संवैधानिक संशोधनों के लिये निर्धारित प्रक्रिया के बिना संशोधन करने के लिये अनेक अपवाद रख दिये गये हैं। समष्टि रूप से हम एक ऐसा संविधान बना सके हैं जो मेरा विश्वास है कि देश के लिये उपयुक्त सिद्ध होगा।

हमारे निदेशक सिद्धान्तों में एक विशिष्ट उपबन्ध है जिसको मैं बहुत महत्व देता हूं। हमने केवल अपने लोगों की भलाई के लिये ही उपबन्ध नहीं बनाये हैं वरन् अपने निदेशक तत्वों में हमने यह निर्धारित किया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा। संघर्षों से जर्जरित संसार में, एक ऐसे संसार में जो दो विश्वयुद्धों के संहार के पश्चात् अब भी शान्ति और सद्भावना स्थापित करने के लिये शस्त्रीकरण में विश्वास कर रहा है, यदि हम राष्ट्रपिता की शिक्षाओं का सच्चे रूप में पालन करें और अपने संविधान के इस निदेशक तत्व पर चलें कि यह निश्चित है कि हम अवश्य ही एक महान् कार्य करने में सफल होंगे। इन कठिनाइयों के होते हुए भी और एक ऐसे वातावरण के होते हुए भी जो हमारा मार्ग भली प्रकार रोक सकता है, हे ईश्वर! तू हमें इस मार्ग पर चलने की सद्बुद्धि और शक्ति दे। हम स्वयं अपने में और उस महात्मा की शिक्षाओं में विश्वास रखें जिसका चित्र मेरे सर पर टंगा हुआ है और केवल अपने देश की ही नहीं वरन् इस सारे संसार की आशाओं को हम पूरा करेंगे और केवल अपने देश के ही नहीं वरन् सारे संसार के सर्वोत्तम हितों के प्रति हम सच्चे सिद्ध होंगे।

ऐसी केवल दो खेद की बातें हैं जिनमें मुझे माननीय सदस्यों का साथ साझा करना चाहिये। विधान मंडल के सदस्यों के लिये कुछ अर्हतायें निर्धारित करना मैं पसंद करता हूं। यह बात असंगत हैं कि उन लोगों के लिये हम उच्च अर्हताओं का आग्रह करें जो प्रशासन करते हैं या विधि के प्रशासन में सहायता देते हैं और उनके लिये हम कोई अर्हता न रखें जो विधि का निर्माण करते हैं सिवा इसके कि उनका निर्वाचन हो। एक विधि बनाने वाले के लिये बौद्धिक उपकरण अपेक्षित हैं और इससे भी अधिक वस्तुस्थिति पर संतुलित विचार करने की स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करने की सामर्थ्य की आवश्यकता है और सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि जीवन के उन आधारभूत तत्वों के प्रति सच्चाई हो। एक शब्द में यह कहना चाहिये कि चरित्रबल हो। यह संभव नहीं है कि व्यक्ति के नैतिक गुणों को मापने के लिये कोई मापदण्ड तैयार किया जा सके और जब तक यह संभव नहीं होगा तब तक हमारा संविधान दोषपूर्ण रहेगा। दूसरा खेद इस बात पर है कि हम किसी भारतीय भाषा में स्वतंत्र भारत का अपना प्रथम संविधान नहीं बना सके। दोनों मामलों में कठिनाइयां व्यावहारिक थीं और अविजेय सिद्ध हुई। पर इस विचार से खेद में कोई कमी नहीं हो जाती है। ❑

विवेक वरदान है

❑

❑
ओमप्रकाश टाक

प्रसिद्ध लेखक, चिंतक, साहित्य प्रेमी ओमप्रकाश टाक प्रस्तुत आलेख में 'विवेक' को सर्वोपरी मानते हैं। विवेक के महत्व पर प्रकाश डालता यह लेख पाठकों को सजग-सचेत कर नई दिशा एवं दिव्य दृष्टि प्रदान करता है। ❑ सं.

विवेक का अर्थ है सत्य और असत्य, अच्छाई और बुराई में भेद करने की दृष्टि। यह भेद एक सात्त्विक और हार्दिक मनोभाव से ही संभव है और इसी का नाम विवेक है। जब विवेक का उदय होता है तो अज्ञान मिट जाता है और जीवन में क्रांति घटित होती है। विवेक के उदित होने में माह या बरस नहीं लगते, यह बिजली की तरह क्षणभर में भी कौंध सकता है। कहते हैं तुलसीदास पहले बड़े स्त्रैण थे। पत्नी नैहर जाने लगी तो तुलसी दास भी पीछे-पीछे चलने लगे। पत्नी ने चिढ़कर कहा 'इस आसक्ति का तिलभर अंश भी यदि ईश्वर को दे पाते तो उन्हें पा लेते।' तुलसीदास का तन-मन संयत हो गया और तत्काल उनका विवेक जाग गया। क्षणभर में उनकी मनुष्य बुद्धि सो गई और भागवत बुद्धि जागृत हो गई। विवेक यही करता है। जब विवेक जागृत होता है तो पलभर में कामभाव नष्ट हो जाता है और प्रेमभाव जाग जाता है। विवेक क्षणभर में दास भाव का हरण कर दिग्विजय को सिद्ध कर देता है। कदाचित् इसीलिए विवेक को दिव्य दृष्टि का पर्याय माना जाता है।

विवेक आत्मकल्याण का द्वार खोलता है। यह परमार्थ पथ पर बढ़ाया गया पहला कदम है। योगशास्त्र में कहा गया है 'विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्' यानी मोक्ष की तरफ जाना है तो विवेक की दिशा में जाना होगा। योगी विवेक की दिशा से ही मोक्ष की तरफ जाता है। जैसे पानी नीचे की ओर जाते जाते समुद्र में पहुँचता है वैसे ही योगी विवेक की तरफ जाते जाते कैवल्य में पहुँचता है। बाबा विनोबा कहते हैं विवेकपूर्ण विचार से मन का संघर्ष और द्वैत मिट जाता है और अस्मिता का स्वरूप इतना व्यापक हो जाता है कि आत्मदर्शन की अनुभूति होने लगती है। इसका मूल आशय यही है कि जब निरंतर अभ्यास के द्वारा हम विवेक लाभ करते हैं तो अज्ञान चला जाता है और आत्मा अपने सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। यही विवेक की चरम परिणति है और यही विवेक का वैभव है। इसी से शांति, समता और पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति होती है।

संत हो या संसारी सभी को विवेक के आश्रय की आवश्यकता रहती है। सच्चा संत केवल वेषधारी नहीं होता वह वैरागी और विवेकी भी होता है। यही उसकी शोभा है। इसी तरह संसारी विवेक की शरण में जाकर ही अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाता है। वह विवेक रूपी पतवार के सहारे यदि भवसागर की नौका खेता है

तो संसार से तर जाता है और किनारा पा लेता है। गीता में मनुष्य के विवेक को ही सर्वाधिक विश्वसनीय माना गया है। संत विवेक की शक्ति से ही चित्तवृत्ति निरोध करता है और संसारी विवेक के सहारे से ही चंचल मन पर अंकुश लगाता है और उसे आत्मा में स्थिर करने का प्रयत्न करता है। अत: मनुष्य के लिये विवेक ही वरदान है और वही सबसे बड़ा अवलंब है।

यों देखा जाए तो जीवन में विवेक की भूमिका सबसे मूल्यवान और अद्‌भुत दिखाई देती है। मनुष्य का मन जब स्वाभाविक धर्म के विरुद्ध चलने लगता है तब विवेक ही उसका मार्गदर्शन करता है। विवेकी मनुष्य के पास सुख–दु:ख, आशा–निराशा, जय–पराजय, हानि–लाभ आदि सभी स्थितियों को ग्रहण करने का सम्यक् तरीका होता है। वह किसी घटना से बेचैन नहीं होता बल्कि हर घटना को और हर परिस्थिति को धैर्य और उदारतापूर्वक बिना प्रफुल्लित और व्यथित हुए सहज भाव से स्वीकार करता है। विवेक की मुख्य पहचान ही विनय, सत्य, प्रेम, प्रशांति और लोकोपकार की भावना से जुड़ी है। यदि मनुष्य के मनमस्तिष्क में शुद्ध विचार हैं और वह अतीत के लिए शोक और भविष्य की चिन्ता से मुक्त है तो मानना चाहिए कि वह साधना के पथ पर है और उसका विवेक जागृत है। मनुष्य के अंत:करण में उठने वाली सेवा एवं परमार्थ की उदात्त भावनाएं विवेक से ही पोषण पाती हैं। हमारे देश में राजसत्ता के ऊपर ऋषि सत्ता को जो प्रतिष्ठा और वरीयता दी जाती है वह अकारण नहीं

जीवन में विवेक की भूमिका सबसे मूल्यवान और अद्‌भुत दिखाई देती है। मनुष्य का मन जब स्वाभाविक धर्म के विरुद्ध चलने लगता है तब विवेक ही उसका मार्गदर्शन करता है। विवेकी मनुष्य के पास सुख–दु:ख, आशा–निराशा, जय–पराजय, हानि–लाभ आदि सभी स्थितियों को ग्रहण करने का सम्यक् तरीका होता है।

है। इतिहास में ऐसे अनेक राजा महाराजा हुए हैं जिन्होंने संत–महात्माओं से मार्गदर्शन प्राप्त करके ही विधि और विवेक का शासन स्थापित किया और देश व समाज के लिए वही शासन अंतत: कल्याणकारी भी सिद्ध हुआ।

प्राय: हमें मस्तिष्क और हृदय में द्वन्द्व देखने को मिलता है। सच तो यह है कि यह द्वन्द्व ही बुद्धि और विवेक में अन्तर का आधार है। बुद्धि केवल बहिर्जगत का द्वार खोलती है लेकिन विवेक अन्तर्जगत का द्वार खोलता है। शरीर की जरुरतें बुद्धि से पूरी होती है लेकिन आत्मा की आवश्यकताएं विवेक ही पूरी करता है। बुद्धि के अनेक प्रकार भेद खोजे जा सकते हैं और बुद्धि से अनेक विचार भी जन्म ले सकते हैं लेकिन विवेक के न तो प्रकार भेद होते हैं और न उसमें विचारों की भरमार होती है। निर्विचार और निर्विकल्प शुद्ध सत्व ही विवेक होता है और आत्मा उसी में रमण कर आनंदित होती है। विडंबना है कि आज शिक्षण और प्रशिक्षण की जितनी भी संस्थाएं हैं वे सभी बुद्धि को ही प्रमुख मानती है और हृदय का स्पर्श तक नहीं करती और वहाँ से निकलने वाला विद्यार्थी इतना कोरा, कठोर और यंत्रवत् होता है कि उसका विवेक सुषुप्त अवस्था में ही रहता है। आज देश और विश्व की सारी समस्याएं चाहे वे व्यक्तिगत हों या सामूहिक, विवेक के खो जाने या सो जाने का परिणाम है। आज आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के विवेक को जागृत करने के पुनीत कार्य को अभियान का रूप प्रदान किया जाए और उसके लिए सत्संग, सद्‌ग्रंथ, संत–सेवन और ध्यान की विधियों को आत्मसात् किया जाए।

महात्मा गांधी के अनुसार बुद्धि विवेक की दासी है और विवेक हृदय का सम्राट है। बुद्धि के तीव्र होने पर भी विवेक की अपेक्षा रहती है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और अनासक्ति की बुनियाद में विवेक ही है। विवेक ही मनुष्य को वासना की दासता से मुक्त करता है, विचारों की दौड़–धूप से बचाता है और आंतरिक आलोक से परिचित करवाता है। अत: विवेक ही आत्मा की पुकार है जिसे हर परिस्थिति में सुना जाना चाहिए। दिनकर अपनी कविता में कहते हैं 'जब नाश मनुज पे छाता है, पहले विवेक मर जाता है।' विवेक को जिलाए रखना ही सबसे बड़ी साधना है। यही परम पुरुषार्थ है।❑

फोन–9829027010

अहिंसा की वास्तविक प्रवृत्ति

❑
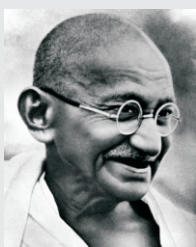
❑
महात्मा गांधी

हिन्दू, मुस्लिम एकता के लिए महात्मा गांधी का यह कहना था कि हिन्दू, मुस्लिम यह घोषणा करें कि हम एक दूसरे के प्रति ऐसा व्यवहार करेंगे कि हम एक ही मां–बाप की संतान है, कि हम लोगों में कोई भेद नहीं होंगे, कि एक का दुख दूसरे का दुख होगा तथा यह कि एक–दूसरे का दुख दूर करने में परस्पर सहयोग करेंगे।❑ सं.

महात्मा गांधी यह मानते थे कि दोनों समुदायों के बीच संबंधों को बिगाड़ने में कहावतों का बहुत योगदान रहा है। 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने लिखा था कि 'मियां और महादेव की नहीं बनती' जैसी कहावतों को ऐसा ही समझना चाहिए। कुछ कहावतें हमेशा के लिए रह जाती हैं और नुकसान करती ही रहती हैं। हम कहावत की धुन में इतना भी याद नहीं रखते कि बहुतेरे हिन्दुओं और मुसलमानों के पूर्वज एक ही थे, हमारे अंदर एक ही खून है। क्या धर्म बदला, इसलिए हम आपस में दुश्मन बन गये? धर्म तो एक ही जगह पहुंचने के अलग–अलग रास्ते हैं। हम दोनों अलग–अलग रास्ते लें, इससे क्या हो गया ? उसमें लड़ाई किस बात की?

यही नहीं, गांधीजी बताते हैं कि ऐसी कहावतें भारतीय समाज में अलग–अलग धार्मिक मतों को मानने वालों में भी प्रचलित हैं। 'हिन्द स्वराज' में ही वे लिखते हैं कि ऐसी कहावतें तो शैवों और वैष्णवों में भी चलती हैं, पर इससे कोई यह नहीं कहेगा कि वे एक अलग राष्ट्र है। वैदिक धर्म और जैन मत के बीच बहुत अंतर माना जाता है, फिर भी इससे वे एक अलग राष्ट्र नहीं बन जाते। हम गुलाम हो गये है, इसीलिए हम अपने झगड़े तीसरे के पास ले जाते हैं। जैसे मुसलमान मूर्ति का खंडन करने वाला एक वर्ग देखने में आता है। ज्यों–ज्यों सही ज्ञान बढ़ेगा, त्यों–त्यों हम समझते जायेंगे कि हमें पसंद न आने वाला धर्म दूसरा आदमी पालता हो, तो भी उससे बैर भाव रखना हमारे लिए ठीक नहीं, हम उस पर जबरदस्ती न करें।

रौलेट सत्याग्रह के दौरान गांधीजी ने दोनों संप्रदाय के लोगों से आग्रह किया था कि ईश्वर को साक्षी मानते हुए हम हिन्दू और मुसलमान यह घोषित करें कि हम दूसरे के प्रति ऐसा व्यवहार करेंगे कि हम एक ही मां–बाप की संतान हैं, कि हम लोगों में कोई भेद नहीं होंगे, कि एक का दु:ख दूसरे का दु:ख होगा तथा यह कि एक–दूसरे का दु:ख दूर करने में परस्पर सहयोग करेंगे। हम एक दूसरे के धर्म और धार्मिक प्रथाओं के मार्ग में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न करेंगे। हम एक दूसरे के धर्म के नाम पर हिंसा से दूर रहेंगे।

महात्मा गांधी खिलाफत आंदोलन के शीर्षस्थ नेताओं की धार्मिक कट्टरता को देख चुके थे। फिर भी वे एक राष्ट्र की भावना के तहत मुस्लिम संप्रदाय के निजी हितों को देखते हुए उन्हें पूर्ण सहयोग देना चाहते थे। गांधीजी का मानना था कि शक्तिशाली ब्रिटिश शासन के विरुद्ध

जन आंदोलन चलाने के लिए मुस्लिम संप्रदाय का सहयोग लेना आवश्यक है। यहां यह बताना आवश्यक है कि गांधीजी ने 'असहयोग' शब्द का प्रयोग पहली बार दिल्ली में 23 नवंबर, 1919 में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन में किया था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता गांधीजी ने ही की थी और यहीं असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम की व्याख्या की थी।

गांधी जी ने 4 मई, 1920 को मगनलाल गांधी को लिखे पत्र में इस भावना को स्पष्ट किया कि यदि वे खिलाफत आंदोलन में सम्मिलित नहीं होते तो वे अपना सब कुछ खो बैठते। इस आंदोलन में सम्मिलित होकर उन्होंने अपने धर्म का पालन किया। इस आंदोलन के माध्यम से वे अहिंसा की वास्तविक प्रवृत्ति दिखाना चाहते थे। वे हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य एकता स्थापित कर रहे थे। वे यह समझते थे कि असहयोग आंदोलन सही ढंग से चलता है तो पशु शक्ति पर आधारित महान शक्ति को साधारण सी दिखने वाली शक्ति के आगे समर्पण करना होगा। खिलाफत आंदोलन ने भारत के समाज में मंथन कर दिया। इस संबंध में भारतीयों को यह चिन्ता नहीं होनी चाहिए कि इसके क्या परिणाम निकलेंगे।

यद्यपि गांधीजी ने खिलाफत आंदोलन को धर्मनिरपेक्ष स्परूप प्रदान करने का प्रयास किया था, तथापि इस आंदोलन से जुड़े प्रमुख नेता इस्लाम की विधि का कट्टर रूप से अनुपालन करते थे। उदाहरण के लिए खिलाफत आंदोलन के नेता धर्म के नाम पर अपील करते थे और फतवा एवं अन्य धार्मिक प्रतीकों का भरपूर प्रयोग करते थे। परिणाम यह हुआ कि पुराणपंथ की पकड़ मजबूत हुई और राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टि से देखने की आदत पड़ गयी। वह तो गांधीजी का ऐसा व्यक्तित्व था कि वे खिलाफती नेताओं की धार्मिक असहिष्णुता को सहन किये हुए थे। गांधीजी का यह मानना था कि शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती देने के लिए हिन्दुओं और मुस्लिमों का एकजुट होना अति आवश्यक है।

गांधीजी ने खिलाफत आंदोलन को धर्मनिरपेक्ष स्परूप प्रदान करने का प्रयास किया था, तथापि इस आंदोलन से जुड़े प्रमुख नेता इस्लाम की विधि का कट्टर रूप से अनुपालन करते थे। उदाहरण के लिए खिलाफत आंदोलन के नेता धर्म के नाम पर अपील करते थे और फतवा एवं अन्य धार्मिक प्रतीकों का भरपूर प्रयोग करते थे। परिणाम यह हुआ कि पुराणपंथ की पकड़ मजबूत हुई और राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टि से देखने की आदत पड़ गयी।

वस्तुस्थिति तो गांधी जी भी जानते थे कि खिलाफत आंदोलन मूलत: तुर्की की समस्या से जुड़ा हुआ था। फिर भी गांधीजी ने बिना शर्त के मुस्लिमों की भावनाओं का सम्मान करते हुए, उन्हें सहयोग किया। तुर्की में जैसे ही मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र की स्थापना हुई, वैसे ही भारतवर्ष में खिलाफत आंदोलन प्रभावहीन हो गया। खिलाफत आंदोलन के बहुत से नेताओं के स्वर सांप्रदायिक हो गये थे। असहयोग आंदोलन के स्थगन के पश्चात् अवसाद और निराशा के वातावरण में हिन्दू और मुस्लिम सांप्रदायिक संगठन सक्रिय हुए। इस दौर में हिन्दुओं के बीच संगठन और शुद्धि तथा मुसलमानों में तंजीम और तबलीग आंदोलन चले। इन आंदोलनों का उद्देश्य सांप्रदायिक था। फलत: 1923-24 में उत्तर भारत के अनेक शहरों में सांप्रदायिक दंगे हुए। गांधीजी ने सांप्रदायिक दंगों और हिंसा के लिए दोनों समुदायों को फटकारा। उन्होंने कहा कि दोनों समुदाय कायर हैं और इस कायरता के कारण ही सरकार दोनों संप्रदायों को दास की तरह देखती है।

महात्मा गांधी इस प्रकार के धार्मिक उन्माद तथा हिंसा से बहुत क्षुब्ध थे। उनका मानना था कि अहिंसा ही ऐसा मार्ग है, जिससे हमारे धर्म और देश की रक्षा हो सकती है। कोई भी धर्म तलवार की शक्ति पर न तो स्थाई रह सकता है और न रहेगा। इस्लाम फकीरों की शक्ति पर और हिन्दू धर्म तपस्वियों की शक्ति पर जिन्दा है। आज लगभग एक शताब्दी बीत जाने के बाद, इक्कीसवीं शती के दूसरे दशक में भी धर्म, तलवार की शक्ति पर ही जीवित है, यह गांधीजी की कल्पना के भारत की तस्वीर नहीं हो सकती। ❑

'सर्वोदय जगत' पत्रिका से साभार

पर्यावरण

पारिजात 'हरसिंगार'

❑

पारिजात या हरसिंगार उन प्रमुख वृक्षों में से एक है, जिसके फूल ईश्वर की आराधना में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसके फूलों का रंग सफेद और उनकी डंडी केसरिया रंग की होती है। चमकीली केसरिया डंडी पर लगे सुंदर श्वेत पुष्प की खुशबू भी बड़ी मोहक होती है। रात में जब इनकी भीनी-भीनी गंध वातावरण में फैलती है तो पास से गुजरने वाले राहगीर के पांव भी वहां ठिठक जाते हैं। इसके फूलों की विशेषता यह भी है कि वे संध्याकाल में खिलते हैं और रात भर महकने के बाद प्रातःकाल झड़ जाते हैं। इस पर अगस्त से दिसंबर तक फूल आते हैं और गोलाकार तथा चपटे फल लगते हैं। यह वैसे तो सारे भारत में पाया जाता है किन्तु मध्य भारत और हिमालय की नीची तराइयों में अधिक मिलता है। पारिजात विशेष रूप से बाग-बगीचों में खूब लगाया जाता है। इसमें बड़ी मात्रा में फूल आते हैं।

पारिजात अपने मनमोहक पुष्पों के लिये तो प्रसिद्ध है ही आयुर्वेद की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण औषधीय पेड़ है। यह माना जाता है कि पारिजात के वृक्ष को छूने मात्र से ही व्यक्ति की थकान मिट जाती है। इसके पांचों अंग मूल, छाल, पत्ते, फूल व बीज सभी औषधीय गुणों से भरपूर माने जाते हैं। यह औषधीय गुणों का भण्डार माना गया है। आयुर्वेद के विशेषज्ञों के अनुसार पारिजात बावासीर रोग के निदान के लिए रामबाण औषधि है। बवासीर रोग होने पर इसके एक बीज का सेवन प्रतिदिन करने की सलाह दी जाती है। पारिजात के बीज का लेप बनाकर गुदा पर लगाने से भी बवासीर के रोगी को राहत मिलती है। इसके फूल हृदय के लिए भी उत्तम औषधि माने जाते हैं। कहते हैं पारिजात के फूलों का या फिर फूलों के रस का सेवन किया जाए तो हृदय रोग से बचा जा सकता है। इतना ही नहीं पारिजात की पत्तियों को पीस कर शहद में मिलाकर सेवन करने से सूखी खांसी ठीक हो जाती है। इसी तरह पारिजात की पत्तियों को पीसकर त्वचा पर लगाने से त्वचा संबंधी रोग भी ठीक हो जाते हैं। पारिजात की पत्तियों से बने हर्बल तेल का भी त्वचा रोगों में भरपूर इस्तेमाल किया जाता है। पारिजात की कोंपल को पांच काली मिर्च के साथ सेवन करने से महिलाओं को स्त्री रोग में लाभ मिलता है। पारिजात के बीज बालों को बढ़ाने तथा उन्हें पुष्ट करने का काम करते हैं तो इसकी पत्तियों का रस लंबे समय से आ रहे क्रोनिक बुखार में कारगर बताया जाता है।

पारिजात की उत्पत्ति की पौराणिक कथा के अनुसार समुद्र मंथन में यह वृक्ष प्राप्त हुआ था। तब देवराज इंद्र ने उसे लेकर स्वर्ग में ले जा कर वहां लगा दिया था। ❑

डॉ. देवदत्त शर्मा

❑

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के उद्यान में लगे औषधीय पौधों और वृक्षों के परिचय के क्रम में इस बार पारिजात का वर्णन तथा उसके आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सापद्धतियों में उपयोग की जानकारी 'सुनो कहानी पेड़ों की' लेखक डॉ. देवदत्त शर्मा दे रहे हैं। ❑सं.

टिप्पणी

शिक्षा नीति से मेल खाता राष्ट्रीय युवा नीति का प्रारूप

❑

सोहराब बोरा

भारत में 15 से 29 वर्ष की आयु के दुनिया की सबसे बड़ी 34 प्रतिशत किशोर और युवा आबादी है। हालांकि अक्सर यह माना जाता है कि इससे श्रमिकों का एक समुदाय बनता है जो देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान दे सकता है, मगर वास्तविकता काफी अलग है। भारत में अधिकांश युवा लोगों के पास सार्थक रूप से नियोजित होने के लिए या तो प्रासंगिक शिक्षा और कौशल नहीं है या वे सक्षम अवसरों की कमी से पीड़ित हैं। विशेष रूप से वंचित समुदायों के युवाओं के लिए यह एक कटु सत्य है - विशेष रूप से लड़कियों के लिए - जिन्होंने कभी स्कूलों में दाखिला नहीं लिया है या पढ़ाई पूरी किये बिना बाहर हो गए हैं।

यूडाइस प्लस, स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा शुरू की गई सबसे बड़ी प्रबंधन सूचना प्रणालियों में से एक है जो 14.89 लाख से अधिक स्कूलों, 95 लाख शिक्षकों और 26.5 करोड़ बच्चों को कवर करती है। इसकी रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2020-21 में लगभग 5.6 मिलियन छात्र माध्यमिक विद्यालय स्तर पर स्कूलों से बाहर हो गए। 2019 में, 15-29 वर्ष के आयु वर्ग के 30 प्रतिशत से अधिक भारतीय युवा शिक्षा, रोजगार या प्रशिक्षण में नहीं थे। इस समूह में महिलाओं की संख्या 57 प्रतिशत है। आर्थिक प्रवासन, जाति-आधारित भेदभाव, जल्दी और जबरन विवाह, और गतिशीलता पर लिंग नियंत्रण कुछ संरचनात्मक बाधाएं हैं, जिसके परिणामस्वरूप ड्रॉपआउट होते हैं।

ये समस्याएँ किशोर-किशोरियों की अध्ययन में अरुचि, उनकी अनियमित उपस्थिति, या उनके संबंधित सरकारी दस्तावेजों का न होना, जैसे कि आधार कार्ड या अधिवास प्रमाण पत्र, जो उनके स्कूलों में प्रवेश के लिये आवश्यक होते हैं।

युवाओं के सामने आने वाली कई चुनौतियों का समाधान करने के लिए, युवा मामले और खेल मंत्रालय ने हाल ही में राष्ट्रीय युवा नीति 2021 का एक मसौदा जारी किया, जिसमें पिछले वर्ष 2014 की नीति को बदलने की बात की गई है। नीति में युवा विकास के लिए शिक्षा, रोजगार और उद्यमिता, युवा नेतृत्व और विकास, स्वास्थ्य, फिटनेस, खेल और सामाजिक न्याय का 10 साल का विज़न है। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति और सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप, ड्रॉपआउट्स के मुद्दे की पहचान की गई है और समस्या का समाधान करने के लिए संभावित रणनीतियों के साथ विस्तार से चर्चा की गई गई।

राष्ट्रीय युवा नीति 2021 द्वारा सुझाई गई रणनीतियों में से एक यह सुनिश्चित करना कि स्कूल छोड़ने के जोखिम वाले युवाओं को 'स्कूल-समुदाय-माता-पिता की भागीदारी' को बढ़ावा दे कर परामर्श देना और उन्हें स्कूल में रहने के लिए प्रोत्साहित करना। यह नीति 'असाधारण' छात्रों को उनकी योग्यता के आधार पर बैंक ऋण प्रदान कराने और युवाओं की शिक्षा से संबंधित किसी भी जानकारी तक पहुंच सुलभ करने के लिये एक ऑनलाइन डैशबोर्ड बनाने की भी प्रावधान करती है। इस प्रकार इस नीति का जोर स्कूल में रहने का दायित्व व्यक्तिगत शिक्षार्थी पर रखा गया है। ऐसा करने से, स्कूल छोड़ने को एक व्यक्तिगत समस्या भी माना गया है जिसे 'प्रोत्साहन' या परामर्श देकर से हल करने की कोशिश की जा सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में ड्रॉपआउट युवाओं की मदद करने के लिए सरकार को उन संरचनात्मक असमानताओं और बाधाओं का पता करके कदम उठाना होगा जो युवाओं को अपनी शिक्षा बीच में छोड़ने के लिए मजबूर करती हैं। ❑

तीन कहानियां, तीन कथाकार और कहानी पर विमर्श

❑

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में चार दिसंबर को एक पुस्तक पर साहित्यकाओं, समीक्षकों और शिक्षकों के बीच एक अनोखा मगर गहरा संवाद हुआ।शिक्षा पर चिंतन के इस आंगन में यह रचनात्मक प्रयोग अत्यंत सार्थक रहा। समिति के पवित्र प्रांगण में इस विमर्श की गहराई और भव्यता को सभी ने सराहा।

स्थापित परिभाषाओं से इतर अपनी अलग-अलग शैलियों से विशिष्ठ पहचान वाली कहानियां रचने वाले तीन कथाकारों - अशोक आत्रेय, सुभाष दीपक और हेमंत शेष - का हाल ही में जो संयुक्त संग्रह 'कथा-तरंग' प्रकाशित हुआ है, उसके विमोचन के मौके इन तीन कथाकारों ने अपनी एक-एक कहानी पढ़ी और उस पर बड़ी आत्मीयता मगर साफगोई से सुधि लोगों ने चर्चा की। इस चर्चा में इस अवसर पर पढ़ी गई तीन कहानियों पर टिप्पणियां तो हुई हीं मगर चर्चा उनसे भी आगे जाकर कहानी विधा पर ही जबरदस्त विमर्श भी बन गई।

चिंतक, कवि कृष्ण कल्पित का मानना था कि इन लेखकों में मौजूदा कथा शिल्प और उसके परंपरागत ढांचे के प्रति अनोखी असंतुष्टि मिलती है। 'कथा-तरंग' पुस्तक की हेमंत शेष की भूमिका समकालीन गद्य के प्रति वर्तमान समय की नई प्रस्तावना है। उनकी दिलचस्प स्थापना थी कि किताब पढ़ने का भी सौंदर्य होता है।

साहित्यकार और समीक्षक दुर्गाप्रसाद अग्रवाल की मान्यता थी कि कथा संग्रह की कहानियां सीधी सपाट नहीं हैं और उनके अनेक पाठ संभव है। नये समय में लेखक ही नहीं पाठक भी बदला है। वह परंपरा भंजक भी हुआ है। गंभीर समीक्षक राजाराम भादू का चर्चा की सार्थकता को रेखांकित करते हुए कहना था कि कला एकांकित होती है फिर भी उसमें संवाद की स्थिति अंतर्निहित होती है।

शिक्षक डॉ. संबोध गोस्वामी को 'कथा-तरंग' में एंटी-स्टोरी दिखी तो अन्य शिक्षिका प्रणु शुक्ला का संग्रह को धरोहर बताते हुए कहना था कि लेखकों का सृजन स्वयंभू और लोकमंगलकारी होता है।

साहित्यकार प्रेमचंद गोस्वामी ने तीन लेखकों की कहानियों को फॉर्मेट तोड़ने वाली बताया जबकि लेखक रमेश खत्री का मानना था कि फॉर्मेट तोड़ती ये कहानियां पाठकों को खींचने वाली चुहेदानी न होकर उन्हें खुला विस्तार देने वाली हैं, वहीं कथाकार विजय तैलंग ने भी संग्रह में शामिल कहानियों को स्थापित मानदंडों को तोड़ने वाली बताया।

संग्रह को अद्‌भुत लेखकों की रचनात्मकता की प्रस्तुति बताते हुए लेखक, समीक्षक और व्यंगकार फारूख आफरीदी को खेद था कि राष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान के लेखकों का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। पत्रकार, लेखक, प्रकाशक गजेंद्र रिज़वानी के अनुसार लेखक-त्रयी तो एक प्रकार से कथा लेखन का विलक्षण घराना ही बन गया है। फोटोग्राफी कला के चितेरे महेश स्वामी को भी पुस्तक में अद्भुत शिल्प नजर आया।

बहुविधाओं में गहरी दखल रखने वाले कथाकार कवि अशोक आत्रेय ने अपनी कहानियों को विचित्र बताते हुए सबका धन्यवाद किया।

कार्यक्रम की शुरुआत डागर घराने की ध्रुपद गायिका गायत्री शर्मा ने ध्रुपद शैली में सरस्वती की वंदना से की। प्रभात गोस्वामी ने कार्यक्रम का प्रभावी संचालन किया। ❑
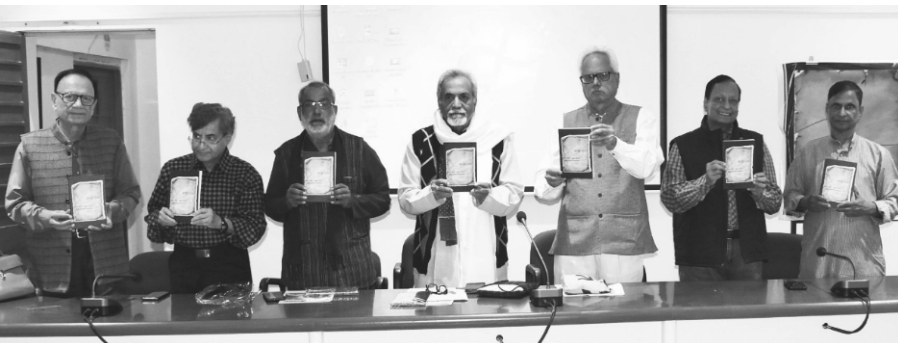
श्रद्धांजलि

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के संयोजन सचिव श्री दिनेश पुरोहित की धर्मपत्नी श्रीमती अरूणाजी का 15 दिसम्बर, 2022 को जयपुर में देहावसान हो गया।

अरूणा जी सौम्य, सीधी और सरल स्वभाव की धनी थीं। सेवाभाव उन्हें प्रसाद के रूप में मिला था। आतिथ्य सत्कार उनके जीवन में रचा बसा था। अपने प्यार की उष्मा से वे पूरे परिवार को, कुटुम्ब को सींचती रही हैं।

अरूणा जी लम्बे समय से बीमारियों से लड़ रही थीं। पिछले दिनों जयपुर के साकेत अस्पताल में भर्ती थी, आई.सी.यू. एवं वोंटीलेटर पर भी रहीं। उन्होंने अस्पताल में ही आखिरी सांस ली।

ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसी दिव्य आत्मा को शांति प्रदान करे।

समिति परिवार अपनी ओर से हार्दिक संवेदना प्रकट करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि परिवारजन को यह दु:ख सहन करने की शक्ति प्रदान करे। शत शत नमन्।

ॐ शांति: शांति: शांति:।❑

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक-श्री राजेन्द्र बोड़ा

RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X